श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

रास पंचाध्याय(10.30)

भक्तों मे ज्यों गोपी श्रेष्ठ, मुनियों में ज्यों व्यास।
पुराणों में ज्यों भागवतम्, लीला में महारास।।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

दशमः स्कंधः

अथ त्रिं(म्)शोऽध्यायः

श्रीशुक उवाच

अन्तर्हिते भगवति, सहसैव व्रजाङ्गनाः ।
अतप्यं(म्)स्तमचक्षाणाः(ख्), करिण्य इव यूथपम् ॥ 1॥

अतप्+ यं(म्)स्त+ मचक्षाणाः(ख्)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं— परीक्षित! भगवान सहसा अन्तर्धान हो गये। उन्हें न देखकर व्रज युवतियों की वैसी ही दशा हो गयी, जैसे यूथपति गज राज के बिना हथिनियों की होती है। उनका हृदय विरह की ज्वाला से जलने लगा ॥ 1 ॥

गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर् -
मनोरमालापविहारविभ्रमैः ।
आक्षिप्तचित्ताः(फ्) प्रमदा रमापते-
स्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥ 2॥

गत्या+ नुरागस् + मितविभ्रमे+ क्षितैर् , मनो+ रमाला+ पविहा+ रविभ्रमैः

आक्षिप्त+ चित्ताः(फ्), जगृहुस् + तदात् + मिकाः

भगवान श्रीकृष्ण की मदोन्मत्त गजराजकी-सी चाल, प्रेमभरी मुसकान, विलासभरी चितवन, मनोरम प्रेमालाप, भिन्न-भिन्न प्रकार की लीलाओं तथा शृङ्गार रस की भाव-भङ्गियोंने उनके चित्तको चुरा लिया था। वे प्रेमकी मतवाली गोपियाँ श्रीकृष्णमय हो गयी | और फिर श्रीकृष्ण की विभिन्न चेष्टाओंका अनुकरण करने लगी ॥ 2 ॥

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु,

प्रियाः(फ्) प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ।

असावहं(न्) त्वित्यबलास्तदात्मिका,

न्यवेदिषुः(ख्) कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ 3॥

गतिस् + मितप्रे+ क्षणभा+ षणादिषु, त्वित् + यबलास्+ तदात्मिका, कृष्णविहा+ रविभ्रमाः

अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की चाल ढाल, हास-विलास और चितवन- बोलन आदिमें श्रीकृष्ण की प्यारी गोपियाँ उनके समान ही बन गयीं; उनके शरीरमें भी वही गति-मति, वही भाव-भङ्गी उतर आयी। वे अपनेको सर्वथा भूलकर श्रीकृष्ण स्वरूप हो गयीं और उंन्ही के लीला-विलास का अनुकरण करतीहुई 'मैं श्रीकृष्ण ही हूँ ' इस प्रकार कहने लगीं ॥ 3 ॥

गायन्त्य उच्चैरमुमेव सं(म्)हता,

विचिक्युरुन्मत्तकवद् वनाद् वनम् ।

पप्रच्छुराकाशवदन्तरं(म्) बहिर्-

भूतेषु सन्तं(म्) पुरुषं(वँ) वनस्पतीन् ॥ 4॥

विचिक्+ युरुन्+ मत्तकवद्, पप्रच्+छुराका+ शवदन्तरं(म्)

वे सब परस्पर मिलकर ऊँचे स्वरसे उन्हीं के गुणोंका गान करने लगी और मतवाली होकर एक वनसे दूसरे वनमें, एक झाड़ीसे दूसरी झाड़ीमें जा-जाकर श्रीकृष्णको ढूंढने लगीं। परीक्षित् । भगवान् श्रीकृष्ण कहीं दूर थोड़े ही गये थे। वे तो समस्त जड़-चेतन पदार्थों में तथा उनके बाहर भी आकाश के समान एकरस स्थित ही हैं। वे वहीं थे, उन्हींमें थे, परन्तु उन्हें न देखकर गोपियाँ वनस्पतियों से पेड़-पौधोंसे उनका पता पूछने लगीं ॥ 4 ॥

दृष्टो वः(ख्) कच्चिदश्वत्थ, प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ।

नन्दसूनुर्गतो हृत्वा, प्रेमहासावलोकनैः ॥ 5॥

कच्चिदश् + वत्थ, नन्दसू+ नुर्गतो

(गोपियोंने पहले बड़े-बड़े वृक्षोंसे जाकर पूछा) हे पीपल, पाकर और बरगद ! नन्द नन्दन श्याम सुन्दर अपनी प्रेमभरी मुसकान और चितवनसे हमारा मन चुराकर चले गये. हैं। क्या तुम लोगोंने उन्हें देखा है ? ॥ 5 ॥

कच्चित् कुरबकाशोक- नागपुन्नागचम्पकाः ।

रामानुजो मानिनीना- मितो दर्पहरस्मितः ॥ 6॥

नागपुन्ना+ गचम्पकाः

कुरबक, अशोक, नागकेशर, पुन्नाग और चम्पा ! बलरामजी के छोटे भाई, जिनकी मुसकान मात्रसे बड़ी-बड़ी मानिनियों का मान मर्दन हो जाता है, इधर आये थे क्या ?' ॥ 6 ॥

कच्चित्तुलसि कल्याणि, गोविन्दचरणप्रिये ।
सह त्वालिकुलैर्बिभ्रद्- दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ 7॥

त्वा+ लिकुलैर्+ बिभ्रद्, दृष्टस्तेऽ+ तिप्रियोऽ+ च्युतः

(अब उन्होंने स्त्रीजातिके पौधोंसे कहा) 'बहिन तुलसी ! तुम्हारा हृदय तो बड़ा कोमल है, तुम तो सभी लोगोंका कल्याण चाहती हो। भगवान्के चरणों में तुम्हारा प्रेम तो है ही, वे भी तुमसे बहुत प्यार करते हैं। तभी तो भौरोंके मंडराते रहनेपर भी वे तुम्हारी माला नहीं उतारते, सर्वदा पहने रहते हैं। क्या तुमने अपने परम प्रियतम श्याम सुन्दरको देखा है ? ॥ 7 ॥

मालत्यदर्शि वः(ख्) कच्चिन्- मल्लिके जाति यूथिके ।
प्रीतिं(वँ) वो जनयन् यातः(ख्), करस्पर्शेन माधवः ॥ 8॥

प्यारी मालती ! मल्लिके ! जाती और जूही ! तुम लोगोंने कदाचित् हमारे प्यारे माधव को देखा होगा। क्या वे अपने कोमल करोंसे स्पर्श कर के तुम्हें आनन्दित करते हुए इधर गये हैं?' ॥ 8 ॥

चूतप्रियालपनसासनकोविदार-
जम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः ।
येऽन्ये परार्थभवका यमुनोपकूलाः(श्),
शं(म्)सन्तु कृष्णपदवीं(म्) रहितात्मनां(न्) नः ॥ 9॥

चूतप्रिया+ लपनसा+ सनको+ विदार, जम्ब्वर्क+ बिल्व+ बकुला+ म्रकदम् + बनीपाः

रसाल, प्रियाल, कटहल, पीतशाल कचनार, जामुन, आक, बेल, मौलसिरी, आम, कदम्ब और नीम तथा अन्यान्य यमुना के तट पर विराजमान सुखी तरुवरो ! तुम्हारा जन्म-जीवन केवल परोपकार के लिये है। श्रीकृष्णके बिना हमारा जीवन सूना हो रहा है। हम बेहोश हो रही है। तुम हमें उन्हें पाने का मार्ग बता दो' ॥ 9 ॥

किं(न्) ते कृतं(ङ्) क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रि-
स्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि ।
अप्यङ्घ्रिसम्भव उरुक्रमविक्रमाद् वा,
आहो वराहवपुषः(फ्) परिरम्भणेन ॥ 10॥

स्पर्शोत्+ सवोत्+पुलकिताङ्+ गरुहैर्विभासि

भगवान्की प्रेयसी पृथ्वीदेवी! तुमने ऐसी कौन-सी तपस्या की है कि श्रीकृष्ण के चरण कमलो का स्पर्श प्राप्त कर के तुम आनन्द से भर रही हो और तृण-लता आदि के रूप में अपना रोमाञ्च प्रकट कर रही हो ? तुम्हारा यह उल्लास-विलास श्रीकृष्ण के चरण स्पर्श के कारण है। अथवा वामनावतार में विश्वरूप धारण करके उन्होंने तुम्हें जो नापा था, उसके कारण है? कहीं उन से भी पहले वराह भगवान् के अङ्गसङ्ग के कारण तो तुम्हारी यह दशा नहीं हो रही हे ?' ॥ 10 ॥

अप्येणपत्न्युपगतः(फ्) प्रिययेह गात्रैस्-

तन्वन् दृशां(म्) सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः ।

कान्ताङ्गसङ्गकुचकुं(ङ्)कुमरं(ञ्)जितायाः(ख्),

कुन्दस्रजः(ख्) कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥ 11॥

अप्ये+ णपत्+ न्युपगतः(फ्),

कान्ताङ्ग+ सङ्ग+ कुचकुं(ङ्)+ कुमरं(ञ्)+ जितायाः(ख्)

'अरी सखी हरिनियो हमारे श्यामसुन्दर के अङ्गसङ्ग से सुषमा सौन्दर्य की धारा बहती रहती है, वे कहीं अपनी प्राणप्रियाके साथ तुम्हारे नयनो को परमानन्द का दान करते हुए इधर से ही तो नहीं गये है? देखो, देखो, यहाँ कुलपति श्रीकष्ण की कुन्दकलीकी मालाकी मनोहर गन्ध आ रही है, जो उनकी परम प्रेयसीके अङ्ग-सङ्गसे लगे कुङ्कूम से अनुरञ्जित रहती है' ॥ 11 ॥

बाहुं(म्) प्रियां(म्)स उपधाय गृहीतपद्मो,

रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ।

अन्वीयमान इह वस्तरवः(फ्) प्रणामं(ङ्),

किं(वँ) वाभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥ 12॥

रामा+ नुजस् + तुलसिका+ लिकुलैर् + मदान्धैः

'तरुवरो! उनकी मालाकी तुलसीमें ऐसी सुगन्ध है कि उसकी गन्धके लोभी मतवाले भौरे प्रत्येक क्षण उसपर मँडराते रहते हैं। उनके एक हाथमें लीला कमल होगा और दूसरा हाथ अपनी प्रेयसी के कंधे पर रखे होंगे। हमारे प्यारे श्यामसुन्दर इधर से विचरते हुए अवश्य गये होंगे। जान पड़ता है, तुम लोग उन्हें प्रणाम करने के लिये ही झुके हो। परन्तु उन्होंने अपनी प्रेमभरी चितवन से भी तुम्हारी वन्दना का अभिनन्दन किया है या नहीं ?' ॥ 12 ॥

पृच्छतेमा लता बाहू- नप्याश्लिष्टा वनस्पतेः ।

नूनं(न्) तत्करजस्पृष्टा, बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥ 13॥

तत् + करजस्+ पृष्टा, बिभ्रत्युत् + पुलकान्यहो

'अरी सखी ! इन लताओंसे पूछो। ये अपने पति वृक्षोंको भुजपाशमें बाँधकर आलिङ्गन किये हुए हैं, इससे क्या हुआ ? इनके शरीर में जो पुलक है, रोमाञ्च है, वह तो भगवान के नखों के स्पर्शसे ही है। अहो ! इनका कैसा सौभाग्य है ?' ॥ 13 ॥

इत्युन्मत्तवचो गोप्यः(ख्), कृष्णान्वेषणकातराः ।

लीला भगवतस्तास्ता, ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः ॥ 14॥

इत्युन्मत्+ तवचो, ह्यनुचक्रुस् + तदात्मिकाः

परीक्षित ! इस प्रकार मतवाली गोपियाँ प्रलाप करती हुई भगवान श्रीकृष्ण को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते कातर हो रही थीं। अब और भी गाढ़ आवेश हो जाने के कारण वे भगवन्मय होकर भगवान की विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करने लगी ॥ 14 ॥

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः(ख्), कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम् ।
तोकायित्वा रुदत्यन्या, पदाहञ्छकटायतीम् ॥ 15॥

कृष्णा+ यन्त्य+ पिबत्, पदाहञ् + छकटा+ यतीम्

एक पूतना बन गयी, तो दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसका स्तन पीने लगीं। कोई छकड़ा बन गयी, तो किसी ने बाल कृष्ण बनकर रोते हुए उसे पैर की ठोकर मारकर उलट दिया ॥ 15 ॥

दैत्यायित्वा जहारान्या- मेका कृष्णार्भभावनाम् ।
रिङ्गयामास काप्यङ्घ्री, कर्षन्ती घोषनिः(स्)स्वनैः ॥ 16॥

कृष्णार् + भभावनाम्,

कोई सखी बाल कृष्ण बनकर बैठ गयी तो कोई तृणावर्त दैत्य का रूप धारण करके उसे हर ले गयी। कोई गोपी पाँव घसीट-घसीटकर घुटनोंके बल बकैयाँ चलने लगी और उस समय उसके पाजेब रुनझुन रुनझुन बोलने लगे ॥ 16 ॥

कृष्णरामायिते द्वे तु, गोपयन्त्यश्च काश्चन ।
वत्सायतीं(म्) हन्ति चान्या, तत्रैका तु बकायतीम् ॥ 17॥

गोपा+ यन्त्यश्च

एक बनी कृष्ण, तो दूसरी बनी बलराम, और बहुत-सी गोपियाँ ग्वालबालों के रूप में हो गयीं। एक गोपी बन गयी वत्सासुर, तो दूसरी बनी बकासुर। तब तो गोपियोंने अलग-अलग श्रीकृष्ण बनकर वत्सासुर और बकासुर बनी हुई गोपियों को मारने की लीला की ॥ 17 ॥

आहूय दूरगा यद्वत्- कृष्णस्तमनुकुर्वतीम् ।
वेणुं(ङ्) क्वणन्तीं(ङ्) क्रीडन्ती- मन्याः(श्) शं(म्)सन्ति साध्विति ॥ 18॥

कृष्णस् + तमनुकुर् + वतीम्

जैसे श्रीकृष्ण वन में करते थे, वैसे ही एक गोपी बाँसुरी बजा-बजा कर दूर गये हुए पशुओं को बुलाने का खेल खेलने लगी। तब दूसरी गोपियाँ 'वाह-वाह' कर के उसकी प्रशंसा करने लगीं ॥ 18 ॥

कस्यां(ञ्)चित् स्वभुजं(न्) न्यस्य, चलन्त्याहापरा ननु ।
कृष्णोऽहं(म्) पश्यत गतिं(लँ्), ललितामिति तन्मनाः ॥ 19॥

चलन्त्या+ हापरा

एक गोपी अपने को श्रीकृष्ण समझकर दूसरी सखी के गलेमें बाँह डालकर चलती और गोपियोंसे कहने लगती – 'मित्रो! मैं श्रीकृष्ण हूँ। तुम लोग मेरी यह मनोहर चाल देखो' ॥ 19 ॥

मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां(न्), तत्त्राणं(वँ) विहितं(म्) मया ।

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन, यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥ 20॥

तत् + त्राणं(वँ), इत्युक् + त्वैकेन, यतन् + त्युन् + निदधेऽम्बरम्

कोई गोपी श्रीकृष्ण बनकर कहती- 'अरे व्रज वासियो ! तुम आँधी-पानी से मत डरो। मैंने उससे बचने का उपाय निकाल लिया है।' ऐसा कहकर गोवर्धन-धारण का अनुकरण हुई वह अपनी ओढ़नी उठा कर ऊपर तान लेती ॥ 20 ॥

आरुह्यैका पदाऽऽक्रम्य, शिरस्याहापरां(न्) नृप ।

दुष्टाहे गच्छ जातोऽहं(ङ्), खलानां(न्) ननु दण्डधृक् ॥ 21॥

परीक्षित! एक गोपी बनी कालिया नाग तो दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसके सिरपर पैर रखकर बड़ीबड़ी बोलने लगी — रे दुष्ट साँप ! तू यहाँ से चला जा। मैं दुष्टोंका दमन करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ हूँ ॥ 21 ॥

तत्रैकोवाच हे गोपा, दावाग्निं(म्) पश्यतोल्बणम् ।

चक्षूं(म्)ष्याश्वपिदध्वं(वँ) वो, विधास्ये क्षेममं(ञ्)जसा ॥ 22॥

चक्षूं(म्)ष्याश्+ वपिदध्वं(वँ)

इतने में ही एक गोपी बोली- 'अरे ग्वालो! देखो, वन में बड़ी भयङ्कर आग लगी है। तुमलोग जल्दी से जल्दी अपनी आंखे मूंद लो, मैं अनायास ही तुम लोगों की रक्षा कर लूंगा' ॥ 22 ॥

बद्धान्यया स्रजा काचित्- तन्वी तत्र उलूखले ।

भीता सुदृक् पिधायास्यं(म्), भेजे भीतिविडम्बनम् ॥ 23॥

एक गोपी यशोदा बनी और दूसरी बनी श्रीकृष्ण यशोदाने फूलोंकी मालासे श्रीकृष्णको ऊखल में बाँध दिया। अब वह श्रीकृष्ण बनी हुई सुन्दरी गोपी हाथों से मुँह ढँककर भय की नकल करने लगी॥ 23 ॥

एवं(ङ्) कृष्णं(म्) पृच्छमाना, वृन्दावनलतास्तरून् ।

व्यचक्षत वनोद्देशे, पदानि परमात्मनः ॥ 24॥

वृन्दावन+ लतास् + तरून्

परीक्षित्! इस प्रकार लीला करते-करते गोपियाँ वृन्दावन के वृक्ष और लता आदि से भी श्रीकृष्णका पता पूछने लगी। इसी समय उन्होंने एक स्थानपर भगवान् के चरणचिह्न देखे ॥ 24 ॥

पदानि व्यक्तमेतानि, नन्दसूनोर्महात्मनः ।

लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोज-वज्रां(ङ्)कुशयवादिभिः ॥ 25॥

नन्दसूनोर्+ महात्मनः, वज्रां(ङ्)+ कुशयवा+ दिभिः

वे आपसमें कहने लगी 'अवश्य ही ये चरणचिह्न उदारशिरोमणि नन्दनन्दन | श्यामसुन्दरके है; क्योंकि इनमें ध्वजा, कमल, य, अदा और जो आदिके चिह्न स्पष्ट ही दीख रहे हैं ॥ 25 ॥

तैस्तैः(फ्) पदैस्तत्पदवी- मन्विच्छन्त्योऽग्रतोऽबलाः ।

वध्वाः(फ्) पदैः(स्) सुपृक्तानि, विलोक्यार्ताः(स्) समब्रुवन् ॥ 26॥

पदैस् + तत्पदवी, मन्विच् + छन्त्योऽ + ग्रतोऽ + बलाः

उन चरण चिह्नोंके द्वारा व्रज वल्लभ भगवान् को ढूँढ़ती हुई गोपियाँ आगे बढ़ीं, तब उन्हें श्रीकृष्ण के साथ किसी व्रज युवती के भी चरण चिह्न दीख पड़े। उन्हें देखकर वे व्याकुल हो गयीं। और आपस में कहने लगीं ॥ 26 ॥

कस्याः(फ्) पदानि चैतानि, यातायां नन्दसूनुना ।

अं(म्)सन्यस्तप्रकोष्ठायाः(ख्), करेणोः(ख्) करिणा यथा ॥ 27॥

अं(म्)सन्यस्+ तप्रकोष्ठायाः(ख्)

'जैसे हथिनी अपने प्रियतम गज राज के साथ गयी हो, वैसे ही नन्दनन्दन श्यामसुन्दर के साथ उनके कंधे पर हाथ रखकर चलने वाली किस बड़भागिनी के ये चरणचिह्न हैं ? ॥ 27 ॥

अनयाऽऽराधितो नूनं(म्), भगवान् हरिरीश्वरः ।

यन्नो विहाय गोविन्दः(फ्), प्रीतो यामनयद् रहः ॥ 28॥

अवश्य ही सर्व शक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण की यह 'आराधिका' होगी। | इसीलिये इसपर प्रसन्न होकर हमारे प्राणप्यारे श्यामसुन्दर ने हमें छोड़ दिया है और इसे एकान्तमें ले गये हैं॥ 28 ॥

धन्या अहो अमी आल्यो, गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः ।

यान् ब्रह्मेशो रमा देवी, दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥ 29॥

गोविन्दाङ् + घ्र्यब्जरेणवः, दधुर्मूर् + ध्न्यघनुत्तये

प्यारी सखियो ! भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरणकमल से जिस रज का स्पर्श कर देते हैं, वह धन्य हो जाती है, उसके अहो भाग्य हैं। क्योंकि ब्रह्मा, शङ्कर और लक्ष्मी आदि भी अपने अशुभ नष्ट करनेके लिये उस रज को अपने सिरपर धारण करते हैं' ॥ 29 ॥

तस्या अमूनि नः क्षोभं(ङ्), कुर्वन्त्युच्चैः(फ्) पदानि यत् ।

यैकापहृत्य गोपीनां(म्), रहो भुङ्क्तेऽच्युताधरम् ॥ 30॥

कुर्वन्+ त्युच्चैः(फ्), भुङ्क्तेऽ + च्युताधरम्

'अरी सखी! चाहे कुछ भी हो-यह जो सखी हमारे सर्वस्व श्रीकृष्ण को एकान्त में ले जाकर अकेले ही उनकी अधर-सुधा का रस पी रही है, इस गोपी के उभरे हुए चरण चिह्न तो हमारे हृदय में बड़ा ही क्षोभ उत्पन्न कर रहे है' ॥ 30 ॥

न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र, तस्या नूनं(न्) तृणां(ङ्)कुरैः ।

खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितला- मुन्न्ये प्रेयसीं(म्) प्रियः ॥ 31॥

खिद्यत् +सुजाताङ् + घ्रितला

यहाँ उस गोपी के पैर नहीं दिखायी देते। मालूम होता है, यहाँ प्यारे श्यामसुन्दर ने देखा होगा कि मेरी प्रेयसी के सुकुमार चरण कमलों में घास की नोक गड़ती होगी इसलिये उन्होंने उसे अपने कंधे पर चढ़ा लिया होगा ॥ 31 ॥

इमान्यधिकमग्नानि, पदानि वहतो वधूम् ।

गोप्यः(फ्) पश्यत कृष्णस्य, भाराक्रान्तस्य कामिनः ॥ 32॥

इमान् + यधिकमग्+ नानि

सखियो। यहाँ देखो, प्यारे श्रीकृष्ण के चरण चिह्न अधिक गहरे बालू में धंसे हुए हैं। इस से सूचित होता है कि वहाँ वे किसी भारी वस्तुको उठाकर चले हैं, उसीके बोझसे उनके पैर जमीन में धंस गये हैं। हो न हो यहाँ उस कामी ने अपनी प्रियतमा को अवश्य कंधे पर चढ़ाया होगा ॥ 32 ॥

अत्रावरोपिता कान्ता, पुष्पहेतोर्महात्मना ।

अत्र प्रसूनावचयः(फ्), प्रियार्थे प्रेयसा कृतः ।

प्रपदाक्रमणे एते, पश्यतासकले पदे ॥ 33॥

अत्रा+ वरोपिता ,पुष्पहेतोर्+ महात्मना

देखो-देखो यहाँ परम प्रेमी व्रज वल्लभ ने फूल चुनने के लिये अपनी प्रेयसी को नीचे उतार दिया है और यहाँ परम प्रियतम श्रीकृष्ण ने अपनी प्रेयसी के लिये फूल चुने हैं। उचक-उचक कर फूल तोड़नेके कारण यहाँ उनके पंजे तो धरती में गड़े हुए हैं और एड़ीका पता ही नहीं है ॥ 33 ॥

केशप्रसाधनं(न्) त्वत्र, कामिन्याः(ख्) कामिना कृतम् ।

तानि चूडयता कान्ता- मुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ 34॥

परम प्रेमी श्रीकृष्ण ने कामी पुरुष के समान यहाँ अपनी प्रेयसी के केश सँवारे हैं। देखो, अपने चुने हुए फूलों को प्रेयसी की चोटी में गूंथने के लिये वे यहाँ अवश्य ही बैठे रहे होंगे ॥ 34 ॥

रेमे तया चात्मरत, आत्मारामोऽप्यखण्डितः ।

कामिनां(न्) दर्शयन् दैन्यं(म्), स्त्रीणां(ञ्) चैव दुरात्मताम् ॥ 35॥

आत्मारामोऽ+प्यखण्डितः

परीक्षित । भगवान श्रीकृष्ण आत्माराम हैं। वे अपने-आपमें ही सन्तुष्ट और पूर्ण हैं। जब वे अखण्ड हैं, उनमें दूसरा कोई है ही नहीं, तब उनमें काम की कल्पना कैसे हो सकती है? फिर भी उन्होंने कामियों की दीनता-स्त्रीपरवशता और स्त्रियों की कुटिलता दिखलाते हुए वहाँ उस गोपी के साथ एकान्त में क्रीडा की थी— एक खेल रचा था ॥ 35 ॥

इत्येवं(न्) दर्शयन्त्यस्ताश्- चेरुर्गोप्यो विचेतसः ।

यां(ङ्) गोपीमनयत् कृष्णो, विहायान्याः(स्) स्त्रियो वने ॥ 36॥

दर्शयन् + त्यस्ताश्

सा च मेने तदाऽऽत्मानं(वँ), वरिष्ठं(म्) सर्वयोषिताम् ।

हित्वा गोपीः(ख्) कामयाना, मामसौ भजते प्रियः ॥ 37॥

इस प्रकार गोपियाँ मतवाली-सी होकर अपनी सुधबुध खोकर एक दूसरेको भगवान श्रीकृष्णके चरण चिह्न दिखलाती हुई वन-वनमें भटक रही थीं। इधर भगवान श्रीकृष्ण दूसरी गोपियों को वनमें छोड़कर जिस भाग्यवती गोपी को एकान्त में ले गये थे, उसने समझा कि मैं ही समस्त गोपियों में श्रेष्ठ है। इसीलिये तो हमारे प्यारे श्रीकृष्ण दूसरी गोपियोंको छोड़कर, जो उन्हें इतना चाहती है, केवल मेरा ही मान करते हैं। मुझे ही आदर दे रहे हैं ॥ 36-37 ॥

ततो गत्वा वनोद्देशं(न्), दृप्ता केशवमब्रवीत् ।

न पारयेऽहं(ञ्) चलितुं(न्), नय मां(यँ) यत्र ते मनः ॥ 38॥

भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मा और शङ्करके भी शासक हैं। वह गोपी वन में जाकर अपने प्रेम और सौभाग्य के मद से मतवाली हो गयी और उन्हीं श्रीकृष्णसे कहने लगीं— 'प्यारे ! मुझसे अब तो और नहीं चला जाता। मेरे सुकुमार पाँव थक गये हैं। अब तुम जहाँ चलना चाहो, मुझे अपने कंधेपर चढ़ाकर ले चलो' ॥ 38 ॥

एवमुक्तः(फ्) प्रियामाह, स्कन्ध आरुह्यतामिति ।

ततश्चान्तर्दधे कृष्णः(स्), सा वधूरन्वतप्यत ॥ 39॥

आरुह्यता+ मिति, ततश् + चान्तर्+ दधे, वधू+ रन्व+ तप्यत

अपनी प्रियतमा की यह बात सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा- 'अच्छा प्यारी ! तुम अब मेरे कंधेपर चढ़ लो।' यह सुनकर वह गोपी ज्यों ही उनके कंधेपर चढ़ने चली, तो श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये और वह 'सौभाग्यवती गोपी रोने-पछताने लगी ॥ 39 ॥

हा नाथ रमण प्रेष्ठ, क्वासि क्वासि महाभुज ।

दास्यास्ते कृपणाया मे, सखे दर्शय सन्निधिम् ॥ 40॥

हे नाथ! हे रमण ! हे प्रेष्ठ हे महाभुज ! तुम कहाँ हो ! कहाँ हो !! मेरे सखा मैं तुम्हारी दीन-हीन दासी हूँ। शीघ्र ही मुझे अपने सान्निध्यका अनुभव कराओ, मुझे दर्शन दो' ॥ 40 ॥

अन्विच्छन्त्यो भगवतो, मार्गं(ङ्) गोप्योऽविदूरतः ।

ददृशुः(फ्) प्रियविश्लेष- मोहितां(न्) दुःखितां(म्) सखीम् ॥ 41॥

अन्विच् + छन्त्यो

परीक्षित् गोपियाँ भगवान्के चरण चिह्नों के सहारे उनके जाने का मार्ग ढूँढ़ती ढूँढ़ती वहाँ जा पहुँची। थोड़ी दूरसे ही उन्होंने देखा कि उनकी सखी अपने प्रियतम के वियोग से दुखी होकर अचेत हो गयी है ॥ 41 ॥

तया कथितमाकर्ण्य, मानप्राप्तिं(ञ्) च माधवात् ।

अवमानं(ञ्) च दौरात्म्याद्, विस्मयं(म्) परमं(यँ) ययुः ॥ 42॥

कथितमा+ कर्ण्य, दौरात् + म्याद्

जब उन्होंने उसे जगाया, तब उसने भगवान श्रीकृष्ण से उसे जो प्यार और सम्मान प्राप्त हुआ था, वह उनको सुनाया। उसने यह भी कहा कि 'मैंने कुटिलता वश उनका अपमान किया, इसीसे वे अन्तर्धान हो गये।' उसकी बात सुनकर गोपियों के आश्चर्यकी सीमा न रही ॥ 42 ॥

ततोऽविशन् वनं(ञ्) चन्द्र- ज्योत्स्ना यावद् विभाव्यते ।

तमः(फ्) प्रविष्टमालक्ष्य, ततो निववृतुः(स्) स्त्रियः ॥ 43॥

इस के बाद वन में जहाँ तक चन्द्र देव की चाँदनी छिटक रही थी, वहाँ तक वे उन्हें ढूँढ़ती हुई गयीं। परन्तु जब उन्हों ने देखा कि आगे घना अन्धकार है—घोर जंगल है— हम ढूँढ़ती जायँगी तो श्रीकृष्ण और भी उसके अंदर घुस जायँगे, तब वे उधर से लौट आयीं ॥ 43 ॥

तन्मनस्कास्तदालापास्-तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।

तद्गुणानेव गायन्त्यो, नात्मागाराणि सस्मरुः ॥ 44॥

तन्मनस्कास्+ तदालापास्, तद्विचेष्टास्+ तदात्मिकाः, नात्मा+ गाराणि

परीक्षित ! गोपियों का मन श्रीकृष्णमय हो गया था। उनकी वाणी से कृष्ण चर्चाके अतिरिक्त और कोई बात नहीं निकलती थी। उनके शरीर से केवल श्रीकृष्ण के लिये और केवल श्रीकृष्ण की चेष्टाएँ हो रही थीं। कहाँ तक कहूँ; उन का रोम-रोम, उन की आत्मा श्रीकृष्णमय हो रही थी। वे केवल उनके गुणों और लीलाओंका ही गान कर रही थीं और उनमें इतनी तन्मय हो रही थीं कि उन्हें अपने शरीरकी भी सुध नहीं थी, फिर घर की याद कौन करता ? ॥ 44 ॥

पुनः(फ्) पुलिनमागत्य, कालिन्द्याः(ख्) कृष्णभावनाः ।

समवेता जगुः(ख्) कृष्णं(न्), तदागमनकां(ङ्)क्षिताः ॥ 45॥

गोपियों का रोम-रोम इस बात की प्रतीक्षा और आकाङ्क्षा कर रहा था कि जल्दी-से जल्दी श्रीकृष्ण आयें। श्रीकृष्ण की ही भावना मे डूबी हुई गोपियाँ यमुनाजी के पावन पुलिनपर - रमण रेती में लौट आयीं और एक साथ मिलकर श्रीकृष्ण के गुणों का गान करने लगीं ॥ 45 ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां(ङ्) कृष्णान्वेषणं(न्) नामत्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः।।